लम्स बाकी

नीलाक्षी सिंह

लम्स बाकी

मुझे जरा भी याद नहीं कि उस एक पल के पहले मैं क्या कर रहा था। ऐसा लगा जैसे लिफ्ट के रुकते ही घटनाओं ने घटना शुरू कर दिया हो। वह वाकई रुक गई थी और रोशनी चली गई। या संभवतः अँधेरा होने के अगले पल ही सब कुछ रुका। जो भी था

https://www.hindiadda.com/lams-baki/

हम किसी खतरे में प्रवेश कर चुके थे। नहीं... उस वक्त मुझे यह होश नहीं था कि डेंजर जोन में प्रवेश मैंने किसी समूह में किया था कि अकेला था मैं...। निहत्था! ...ऐसा भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि हाथ में मेरे, मोबाइल था। उस वक्त किसी भी हथियार से ज्यादा जरूरी चीज। मैंने अपने लायक रोशनी का जुगाड़ किया ही था मोबाइल के दम पर कि एक छटपटाती सी दुबली-पतली चीज मेरे पैरों पर गिरी। मैं चिहुँका। उधर जोड़ी भर हाथ मेरे पैरों में सेंधमारी करने लगे और फिर एक भय से मिमियाती सी चीख उस वर्गाकार कमरे में बौख गई।

अब चेतना के स्तर पर अँधेरे के बाद की इस घटना के विभिन्न पहलुओं को क्रम दिया जाए तो पहली खोज कि आवाज का सार था कि उसका कुछ फँस चुका था दरवाजे में। दूसरी बात कि पैरों पर धावा देने वाली कोई स्त्री थी। तीसरी कि जो गिरा था मेरे पैरों पर वह मोबाइल था - उसी स्त्री का। और चौथी कि लिफ्ट में शायद दो ही लोग थे और दोनों निहत्थे नहीं थे!

देखा जाए तो पहली खोज ही सबसे महत्वपूर्ण थी! तो क्या उस दूसरे व्यक्ति की किसी चीज के लिफ्ट के बीचोंबीच फँस जाने से ही थम गया था सब कुछ!

'क्या रह गया दरवाजे में?' - यह मैं था।

'दुपट्टा' - उसकी मिमियाती आवाज अब ठस हो चुकी थी। स्पष्ट और संयत।

'पर कुछ तो उपाय करना होगा...' मैं दरवाजे पर दस्तक देने लग गया। असंयत प्रहार। आवाज... कुछ चिल्लाहट भी निकली थी बाहर। पर सिर्फ मुँह से बाहर। कमरे से बाहर नहीं। मेरे दरवाजा पीटने, चीखने और मोबाइल की रोशनी में लिफ्ट के इमरजेंसी लाइट और बेल के स्विच को ताबड़तोड़ टीपने के उपक्रम के समानांतर, बगल वाले की तरफ से कोई भी प्रयास सामने नहीं आया। यह निराशाजनक था जरूर, पर मैंने अपनी कोशिश जारी रखी। न तो इमरजेंसी लाइट जल पा रही थी न बेल ही बजा। अँधेरे की तीव्रता को मापने वाला कोई आविष्कार होता तो इस बात की परख हो पाती कि कालापन आँखों को बंद किए जाने जितना था कि उसके आस-पास कहीं।

मुझे तो दम भी घुटता सा लगने लगा जबकि ऐसा था नहीं शायद। आवाज अब नियमित निकल रही थी हालाँकि उसके सहारे मैं किसको पुकार रहा था..., यह बात मायने नहीं रखती थी। दरवाजे पर पूरे शरीर की लंबाई से धक्का-मुक्की करने के

बाद मैंने मोबाइल पर उँगलियाँ फिरानी शुरू कर दी। लेकिन स्क्रीन पर ऊपर बाईं तरफ सिग्नल न मिल पाने का संकेत था।

'आप अपने मोबाइल में देखिए जरा।'

'बैंलेंस नहीं है।'

मैंने मोबाइल की रोशनी का घेरा उस स्त्री की तरफ फेरा। ठीक चेहरे पर फोकस न कर सका और जो प्रकाश में आया वह छोटी मोतियों की गुँथी हुई बाली थी, जो ठुड्डी के नीचे के बालों के बीच लटक रही थी। पर झुँझलाहट हुई जिसे कोई बाली-ताली कम नहीं कर सकती थी उस वक्त।

'आपके कपड़े की वजह से हम इस तरह फँसे। ध्यान रखना चाहिए था।'

'किसका?'

'अरे...! जो फँस गया उसका।'

'तो क्या मेरी वजह से आप फँस गए?'

'और क्या?'

'आपका मतलब है यह मेरी वजह से हुआ!!!'

उसने एक झटके से कुछ खींचा। मेरे मोबाइल का फोकस उसके हाथ की दिशा में आप-ब-आप मुड़ा। रोशनी के आगे उसके दुपट्टे का कोर था, जिसके किनारे का कपड़ा लंबाई में खोंच की शक्ल में फटा था और आस-पास के बैंगनी सूत मसक गए थे।

'और ये आपकी वजह से हुआ...। अब?' - उसकी आवाज में तल्खी थी।

मैं अवाक।

'मेरा कपड़ा बाहर आ गया दरवाजे से। अब आप दरवाजा खोल कर बाहर निकल सकते हैं' - वाक्य पूरा होते होते उसकी आवाज व्यंग्य से ऐंठ गई।

'अजीब हैं आप! इस तरह बीच में फँसा दिया और अभी मजाक सूझ रहा है आपको!'

'आपकी हरकतों से वैसे ही भरपूर मनोरंजन हो रहा है। फिर मुझे अलग से मजाक करने की क्या जरूरत!'

'शटअप...' - यह मेरी अब तक की सबसे सशक्त चीख थी।

'चिल्लाइए मत! आपकी पहले की चीखों से ही दम घुट रहा है इस लिफ्ट का।'

इस हद तक धीमी लय में कहा उसने कि कमरे के ध्वनि-प्रदूषण को नियंत्रित करने के उसके प्रयास की संजीदगी पर एकबारगी मुझमें भी निष्ठा जाग गई।

'हुँह! वहियात इनसान...' - धीमे से मैंने भी कहा।

उसने साँसों को समेट कर एकबारगी जोर से निकल जाने दिया बाहर की ओर। मेरे पास कोई मौलिक औजार न था। मैं साँसों की आवाज से चलने वाले युद्ध के भी मूड में न था।

'इनसानी गरिमा भी कोई चीज होती है' - मैं बुदबुदाता रहा।

'बिल्कुल! संस्कार से मिलती जुलती शक्ल वाली' - धीमी आवाज ऐंठती ही गई।

'क्या है!' - फिर मैं चीखा।

'आपका क्या है?' - हमशक्ल चीख थी।

वह चीख सीजफायर में तब्दील हो गई। दसेक मिनट गुजर गया। कोई हलचल नहीं थी बाहर। शायद हम दो मंजिलों के बीच फँसे थे। एक-तार के चाशनी जितनी गाढ़ी खामोशी थी। तभी तो मैं बैठने की आवाज को सुन कर ही महसूस सका। वह सचमुच बैठ गई थी। क्योंकि पहले, हाथ की ऊँचाई पर कभी-कभी जलने वाली मोबाइल की रोशनी, अब मेरे घुटने और तलुवों के बीच जल रही थी। वह बैठी थी। बाकायदा पालथी मार कर। उफ! कितना गंदा होगा फर्श। मैंने अपने पैर सिकोड़ लिए और फालतू की बातों से ध्यान हटाकर बाहर निकलने के प्रयासों पर केंद्रित कर लिया अपने को। पर अब मैं पहले की अपेक्षा अपने प्रयासों के प्रति सजग हो गया था। यह जानने के बाद कोई भी हो जाएगा कि आपकी छटपटाहट सामने वाले का मन बहला रही है। छी...! दूसरों के संस्कार देखने के पहले लोगों को अपने आप को भी देख लेना चाहिए। हुँह! होता है मनोरंजन तो हो। मैं क्यों परवाह करूँ! मैंने वापस दरवाजा पीटना शुरू किया। पूरी ताकत से। धुन में। शरीर की सारी शक्ति को केंद्रित कर के।

बेतरतीब। अंधाधुंध...। क्योंकि मैं जानता था शायद... कि इसके बाद मैं भी ढह जाने वाला था उसी मटमैले फर्श पर। एक कोने में। उकड़ू। इतनी ही जिजीविषा थी क्या भीतर! बारह... तेरह... चौदह... मिनट तक टिक पाने वाली!

मैंने घुटनों पर माथा टिका दिया। आँखें खुली हों कि बंद हों कोई भेद नहीं। स्थिर चित्त से अगर घटना के कारणों का विश्लेषण किया जाए तो पहले रोशनी गई, फिर लिफ्ट रुकी। यानी पहले बिजली गई फिर कोई मेकेनिकल फॉल्ट आया लिफ्ट में। अगर ऐसा भी तो एमरजेंसी बेल और लाइट तो बैटरी पर काम कर सकते थे। तो बेल और लाइट के कनेक्शन में भी फॉल्ट या कि बैटरी ही कमजोर थी। या कोई और साइंटिफिक रिजन, जिस तक पहुँचने की मुझ इतिहास के विद्यार्थी को कोशिश नहीं करनी चाहिए। जो भी हो खतरा गहराता जा रहा था।

साँसें अब सच में अपनी खुराक नहीं खींच पा रही थीं। साँसों से मेरा मतलब सिर्फ मेरी साँसों से था। वह तो बकायदा रेघा-रेघा कर साँसें खींच रही थी। हो सकता है आवाज की स्पष्टता सन्नाटे की वजह से थी या कि यह भी कि हवा की कमी में उसे भी मशक्कत करनी पड़ रही थी और श्रम अपने पीछे आवाज की रेखा खींच दे रहा था। अगर दूसरी बात में सत्यता थी तो इसका मतलब कि साँसों से चलने वाले जिस युद्ध से मैं बचना चाह रहा था, वह मुकर्रर था। अगर ऐसा था तो यही सही। पीछे क्या हटना। मैंने भर-भर कर आड़ी-टेढ़ी साँसें खींचनी शुरू की। पर प्रतिद्वंद्वी की तरफ से कोई माकूल जवाब न आया। बल्कि उसकी तरफ से आने वाली साँसों की आवाज मलिन ही होती गई। कहीं फिर से मैं किसी के मनोरंजन का साधन तो नहीं बन रहा था!

लड़की के मोबाइल की रोशनी जली। वह लिफ्ट की दीवार से लगकर बैठी थी और घुटनों पर सिर इस तरह टिकाया था कि उसकी पीठ मेरी ओर थी। उस धुँधलाई रोशनी में वह एक निश्चिंत पीठ का प्रतिनिधित्व कर रही थी। कैसी पगली लड़की थी! अपना कपड़ा तक फाड़ लिया आवेश में। सिर्फ मेरी बात को काटने के लिए! और इस मुसीबत के वक्त में ऐसी उदासीनता। लगता था मानों ट्रेन किसी जगह पर अचानक रुक गई हो दूसरी ट्रेन की क्रासिंग के कारण और इसके अभ्यस्त मुसाफिर जानते हों कि पाँच मिनट देर-सबेर ट्रेन चल पड़ेगी दुबारे। कोई अकुताहट या सुगबुगी के लक्षण नही। लगता था मोबाइल की रोशनी जलाई गई थी खुद को जगाए रखने के प्रयास में। हे भगवान! कहाँ फँस गया था मैं!

एक हल्का झटका! नीचे की तरफ। मैं अगर ऐन वक्त पर काबू न कर लेता अपना उत्साह तो अगले पल वह मेरी बाँहों में होती और उसके अगले पल क्या होता... इसकी कल्पना मैं नहीं करना चाहता। वह वहम नहीं था! वाकई नीचे की तरफ का धक्का ही था जो सरकन में तब्दील हो गया। हम नीचे की तरफ जा रहे थे। मुक्ति का मार्ग था उसके आगे। पर इस अलौकिक अहसास को मैं किसी के साथ बाँट न सकता था। कारण कि बगल वाले इनसान में कोई हरकत न हुई इस मुक्ति की सुगबुगाहट से। कम-से-कम अँधेरे में महसूस तो न हुई ऐसी कोई हिल-डुल। मैं उछलकर खड़ा हो गया और अति उत्साह में दरवाजे पर दस्तक देने लग गया। पर मेरी उछल-कूद से लिफ्ट रुक गई और अगले ही पल मैं वापस बैठ गया। शायद हमें मैनुअली पुल किया जा रहा था नीचे की तरफ किसी फ्लोर तक। आखिर में एक जोर के झटके के साथ हम धरती पर टिके, ऐसा लगा। फिर भी इस भय से कि मेरी हलचल से व्यवधान न आ जाए पुनः क्राइसिस मैनेजमेंट में, मैं हिला नही। बैठा रहा।

अगले कुछ पलों में दरवाजे के की-होल में खट-पट हुई कुछ और रोशनी को साथ लिए लिए दाखिल हुए कई लोग, भीतर। जब तक, बाहर के लोग भीतर न घुस गए, मैं बैठा ही रहा अपनी जगह। अनजान लोग गले मिलकर ऐसे हाथ मिलाने लग गए जैसे मैं अपोलो तेरह से उतरा होऊँ! बात थी भी प्रसन्नता की। भले फ्रिक्वेंसी उतनी न हो।

'कितने देर रह गए फँसे**...?**' कोई उत्साही जिज्ञासा थी या टिप्पणी मात्र। पर जवाब आया झनझनाता**!**

'सत्ताईस मिनट अड़तालिस सेंकेड**...**'

मैंने बाईं तरफ मुड़ कर देखा। लोगों की बदरी के उस पार... वह जा रही थी। एक झलक बस बैंगनी दुपट्टा। कुछ कौंध गया मेरे दिमाग में! मैं लोगों के पूरी तरह हटने की प्रतीक्षा करने लगा।

मिस दत्ता के शरीर में उन तत्वों की कमी थी, जो कि आम औरतों में भी कम होते जाते हैं। उम्र के साथ। हालाँकि यहाँ उम्र का कोई रोल न था। फिर भी। उसके टखनों की हड्डी घिसने लग गई थी और चेहरे पर पीलापन था। बावजूद उसके, जैसे-जैसे उसके हाथों में लहराते पन्ने का टार्गेट पूरा होता जा रहा था, चेहरा उसका - नई तरह की आभा से निखरता गया। महीने के आखिरी दिन चल रहे थे और इस बार दूसरे महीनों के मुकाबिल उसका रिर्पोट-कार्ड बेहतर था।

बैंक के कुछ उत्पाद उसने दिए गए टार्गेट से ज्यादा बेच लिए थे पर कुछ प्रोड्क्ट्स के मामले में वह अभी भी पीछे ही थी। फिर भी बचे हुए दिनों की आस हरा-भरा रखे थी उसे। किसी एक दफ्तर में अगर कि वह सारे कर्मचारियों को अपने उत्पाद बेचने में कामयाब हो जाती तो टार्गेट एचीव कर लेना आसान था उसके लिए। उसने घड़ी देखा - जबकि घंटे भर का आधा समय बरबाद हो चुका था, बुद्धिमानी इसी में थी कि अभी वाले काम को आगे के लिए सरकाकर अगले मिशन पर निकल जाया जाए और वहाँ समय के पहले उपस्थिति दर्ज कराकर बेहतर मार्केटिंग एक्जक्यूटिव होने का विश्वास जमाया जा सके।

उसका अगला ठिकाना एक स्थूलकाय बिल्डिंग थी। उन जीरो साइज काया वाली लिपी-पुती इमारतों के बिल्कुल उलट, जिनमें अमूमन वह जाया करती थी। यह एक स्कूल था, जिसके सारे स्टाफ की सैलरी अकाउंट उसके बैंक में थी। एक सेशन के बच्चे फेन की तरह कमरों से निकलकर स्कूल बसों में समाए जा रहे थे और अगली पारी वाले बच्चे अपनी बसों से उतरकर मैदान में छितरा रहे थे। पंद्रह-बीस मिनट का वक्त इन्हीं दो अंतरालों के बीच से चुराकर दिया गया था उसे।

वह दीवारों पर हिंदी और अँग्रेजी में लगे संकेतों का अनुसरण करती प्राचार्या कक्ष तक पहुँची। जहाँ से उसे स्टाफ-रुम तक ले जाया गया। हिसाब, भूगोल, रसायन, अर्थशास्त्र, संस्कृत, संगीत... उनके चेहरे पर अपने-अपने विषय में लिखी उत्सुकता थी, उसके प्रोडक्ट्स से संबंधित। मिस दत्ता उन सबके सवालों को मार्केटिंग की शब्दावली में अनुवादित कर आम लोगों की भाषा में जवाब उपलब्ध करा रही थी। इस संभावित ग्राहक समुदाय के सवाल बड़े भोले-भाले और ईमानदार थे। विशुद्धतः मध्यमवर्गीय नौकरी पेशा लोगों के सवाल... मसलन कि अगर किसी महीने तनख्वाह न मिली और मासिक किस्त चुकाया न जा सके तो...। या फिर अगर बाद में किस्त बढ़ाकर ऋण जल्दी चुकाना चाहें तो? आदि आदि...। मिस दत्ता की व्यक्तिगत पसंद प्राइवेट सेक्टर के मोटी तनख्वाह वाले लोगों की अपेक्षा ऐसे लोगों के बीच ही अपने उत्पादों की मार्केटिंग करना था। यह बात और है कि उसके व्यक्तिगत पसंद-नापसंद की प्रोफेशनलिज्म में कोई अहमियत न थी।

बहरहाल स्कूल में संतोषजनक प्रदर्शन कर चुकने के बाद उस दिन मिस दत्ता की दिनचर्या में कुछ भी दुबारे से याद करने लायक न गुजरा। दो दफ्तरों में वापस उन्हीं उत्पादों की प्रस्तुति और फिर देर शाम घर आकर उबले आलुओं और पाव रोटी से कुछ नया बनाने का उपक्रम। अगली सुबह काम की शुरुआत उसे उसी दफ्तर से

करनी थी, जो पिछले दिन के लिस्ट में सबसे ऊपर था और अप्रत्याशित तरीके से वक्त की बरबादी हो जाने के कारण जिसे पूरा न किया जा सका था। और जिसे पूरा न कर सकने की माफी उसने सही समय पर ही माँग ली थी। आज पिछली गलती का दुहराव उसे कतई नहीं करना था। कम-से-कम इस बिल्डिंग में तो नहीं।

छठवी मंजिल तक एक साँस में चढ़ना कोई खेल-कौतुक न था। ऊपर से मिस दत्ता की दाहिनी पलक भारी लग रही थी, जिसका साफ मतलब था कि काजल पलकों पर ज्यादा लगा रह गया था। और आईना पर्स में रखना कभी उसकी आदत में शुमार था नहीं। उस दफ्तर में लगे शीशे के दरवाजे पर उसने उचक उचक कर काजल का पसारा परखने की कोशिश की पर हासिल कुछ न हुआ। वेंटिग लाउंज में बैठकर पसीना सुखाते हुए उसे चैन के दो-चार पल नसीब हुए।

अंदर से बुलावा आया। मिस दत्ता कमरे में बेधड़क घुसी। वहाँ उसे जो करना था, उसमें वह मशीन की माकिफ दक्ष थी। चूँकि यह एक अपेक्षाकृत ज्यादा प्रबुद्ध और चतुर ग्राहक की श्रेणी थी, इसलिए उसे कुछ विशेष किस्म के उत्पादों के बारे में बताना था और वह भी बाजार में उपस्थित अन्य प्रतिस्पर्धियों के तुलनात्मक नफे-नुकसान के साथ। सामने वाले ने उसकी बातें ध्यान से सुनीं (प्रतीत कुछ ऐसा ही हुआ), जो फोल्डर उसने बढ़ाया, उसे बेध्यानी से परे सरका दिया और पूछा - 'फिनिश्ड!'

ऐसा नहीं था कि इस पेशे में उसे इस तरह की बेरुखी की अभ्यस्तता न थी। पर जाने क्यों, मिस दत्ता अपने प्रति इस बेरहम व्यवहार से लहक उठी। हालाँकि उसकी बात गौर से सुनी गई थी, पर सामने वाले की बाद की हरकत ने यह साफ कर दिया था कि थी वह अवांछित ही। खासकर अपने दस मिनट के स्लॉट के पूरा हो जाने के बाद। मिस दत्ता को अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करने का मौका दिए बगैर सामने से आवाज आई - 'मैंने सुन ली है आपकी बात। और मुझे कुछ कहना नहीं है जवाब में... तो?' - मतलब साफ था कि आप जा सकती हैं।

मिस दत्ता के मुँह से निकला - 'इनसानी गरिमा भी कोई चीज होती है!'

वैसे ही बेसाख्ता जवाब आया - 'बिल्कुल! संस्कार से मिलती जुलती शक्ल वाली।'

और चौंक कर दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

मिस दत्ता इस चौंकने के दूसरे ही पल उठ कर खड़ी हो गई। अब अगली घड़ी उसे फैसला ले लेना था। यहाँ से आगे वापस बैठना मुश्किल था। इसलिए वह मुड़ गई। हे भगवान! तो क्या वह कमरे में घुसने के पल ही उसे पहचान गया था और बस मौके की ताक में था कि कब उसका अपमान कर सके! यह असहनीय था। और धोखे जैसा भी। अगर वह पहचान ही गया था तो जाहिर कर देना चाहिए था। ताकि वह भी बराबरी की चालें चल सके। सामनेवाला इतनी शातिर चालें चल रहा था और वह बगैर उसे पहचाने अपनी विद्वता बघारे जा रही थी।

उसकी आँखों में डब-डब आँसू थे। अब तक के उसके पूरे कैरियर में उसे अपनी व्यवसायिक मजबूरी पर इतनी कुढ़न नहीं हुई थी। कुढ़न नहीं कह सकते। यह हताशा थी। वह जोर-जोर से पैर ठोंककर जब बाहर आ रही थी कमरे से... तब से लेकर लिफ्ट के बंद होने तक उसका माथा बस घूम रहा था गोल-गोल। पर जैसे ही उसने सिर लिफ्ट की दीवार से टिकाकर आँखें बंद की, आँसुओं का रेला निकल गया। पूरबा दत्ता नाम की एक लड़की, जिसकी स्वछंदता की कहानी दरअसल लिफ्ट से शुरू होकर फिर लिफ्ट में ही शेष हो गई थी, अपने बेसँभार आँसुओं से संबोधि स्थल को समाधि स्थल में परिवर्तित किए चली जा रही थी। लिफ्ट कितनी मर्तबा उपर आई नीचे गई... पर न तो वह चढ़ने वालों के साथ चढ़ी, न उतरने वालों के साथ उतरी। वह तो बस खड़ी थी...

वह स्थिर पड़ी थी। पानी की तली में थिरा कर बैठ गए ठस... ठोस की तरह। क्या थी उसकी जिंदगी! आँखें खुलने के साथ तैयारी की भाग-दौड़ और फिर निकल पड़ना पारदर्शी फोल्डर में विज्ञापनों के कागज सँभाले। जो शिष्टाचार के मारे होते वे उसकी बात पूरी सुनने का धैर्य दिखाते और इनकार को अपनी मौलिक शैली में प्रकट करते। ये वे लोग थे जो उसका मजाक उड़ाने, या उकताने का भाव प्रदर्शित करने, या मुँह बिचका कर व्यंग्य करने के लिए उसके पीछे मुड़ चुकने तक का इंतजार कर लेते। कुछ लोग पिंड छुड़ाने के लिए या तरस खाकर ही राजी हो जाते किसी उत्पाद के लिए। कुछ ऐसे होते जो बिना कुछ सुने नॉट इंट्रेस्टेड का बोर्ड टाँग देते। कुछ सुन कर हजार सवाल कर के नकार देते। कुछ बेतरतीब झिड़क देते। कुछ...।

हर दिन वह इन्हीं प्रजातियों के सामने नए जोश और मुस्कान से अपनी प्रस्तुति देती। शाम में जब दिन भर की बिक्री का लेखा-जोखा वरिष्ठ सहयोगियों के आगे रखना होता तो दस में से औसतन सात बार आँकड़े कम पड़ जाते और बुझे चेहरे के साथ उजाले की बिदाई होती। देखा जाए तो ऐसे अपमान के पल उसकी नौकरी की

आवश्यक शर्त थे। इनसे पार पाए बिना मार्केटिंग में टिकना नामुमकिन था। और वह इस थ्योरी को घोंट कर आत्मसात भी कर चुकी थी। ग्राहकों की दुत्कार और उपेक्षा को दूध-भात दे दिया था उसने इस नौकरी-नौकरी के खेल में। बिला नागा पिछले चार वर्षों से करती चली आ रही थी वह ये सब। कटु शब्दों में कहा जाए तो ऑन-जॉब या बाहरी दुनिया में दाखिल होते ही कोई मान-सम्मान नहीं रह गया था उसका और जबकि दिन में दस घंटे वह उस माहौल में रह लेती थी तो चैतन्य के बचे हुए छह-सात घंटे भी उसी कदम-ताल में निकल जाते थे। इसलिए आत्म-सम्मान धूल में लिसड़ी हुई कोई चीज थी और उस पर व्यवसायिक मजबूरी ने ऐसा बुलडोजर चलाया था कि अगले चार जन्मों तक दब चुकी चीज, सुगबुगाने की जुर्रत नहीं करती।

ऐसी रीढ़विहीन मिस दत्ता ने अपना लिजलिजा चोंगा उतार फेंका इसी जन्म में... कैसे? किस घड़ी... ठीक-ठीक वह भी नहीं ट्रेस कर पा रही थी कि किस वक्त उसकी चेतना नियति पर भारी पड़ गई थी। लिफ्ट में अँधेरा छाते ही या यह अहसास होते कि दुपट्टा उसका फँस गया था दरवाजे में। जो भी पल रहा हो पर बिना किसी पूर्व पीठिका के एक झटके में उसने अपना कोना गढ़ लिया था... जिसमें वह मुँहफट थी, बेधड़क थी, आक्रामक थी... और सबसे बढ़कर आजाद थी...! उस चौखाने में घटनाओं की दिशा नियंत्रित करने वाली ताकत थी उसके हाथ में। उसने अठारह सौ सत्तावन का स्वाद चख लिया था। एक ऐसी क्रांति, जिसमें न लाल रंग हो न शत्रु कोई। बस एक बेपरवाही थी, प्रतिरोध था, 'मेरा मन...' का उद्घोष था। वह सब था जोकि सुंदर था और जिनका कि अभाव उसकी जिंदगी में गहराता जा रहा था। सामने... कह सकते हैं पार्श्व में एक अजनबी था, जिसके होने-न-होने का अस्तित्व सिर्फ घटना के साक्ष्य के रूप में उपस्थित होना भर था।

वह नहीं चाहती थी कि दुबारे से चल पड़े लिफ्ट और सब कुछ इतना सुंदर खत्म हो जाए। वह देर तक जी लेना चाहती थी इस संसार के अहसास को। और बाहर निकलने के लिए किए जा रहे लड़के के ऊल-जुलूल हथकंडे उग्र बना दे रहे थे उसे। जितने भी पल उसे नसीब हुए उस रोज, वह उन्हें सहलाकर एक लंबा वक्त गुजार सकती थी। भले जगह संकुचित थी... लिफ्ट का वर्गाकार घेरा भर। पर फिर भी। अपने सम्मान और स्वछंदता की परिभाषा तो गढ़ी ही थी उसने, जिसका विस्तार कमरे के घेरे के उलट, असीम था...। भले सत्ताईस मिनट अड़तालिस सेंकेड ही उम्र थी उस आजादी की पर उसका पुर्नजन्म नहीं हो सकता था... ये किसने कहा। भविष्य के एकांत में अगर कभी फिर से एक आभासी दुनिया का निर्माण कर अपनी

स्वछंदता पाने की जरूरत होती, तो वह वैसा कर सकती थी उस वाकये की डोर पकड़कर।

अब सब कुछ खत्म हो चुका था और वह भी इतने निराशाजनक तरीके से। उसे क्या जरूरत थी इनसानी गरिमा वाली उसकी बात दोहराने की! संभवतः, 'अगर वह पहचान ही गया था तो जताया क्यों न पहले...' से ज्यादा तकलीफ मिस दत्ता को इस बात की हो रही थी कि पकड़ी भी गई उन दोनों की पहचान तो इसका आधार बनी सामने वाले की वह उक्ति, जिसकी कि कभी खुद धज्जियाँ उड़ाई थी उसने। और इससे भी ज्यादा... सबसे ज्यादा टीस इस बात की कि जिसे साक्ष्य बना कर मिस दत्ता ने अपनी आक्रामकता और स्वछंदता का दुर्ग गढ़ा था, उस आदमी के सामने ही नाटकीयता से अपनी लुंजपुंज मार्केटिंग स्किल का प्रदर्शन कर डाला उसने। और सामनेवाले ने उसे पहचान कर पहले आनंद लेने और फिर दुत्कार देने में जरा भी कोताही न की। यह सब एक साथ सँभाल से बाहर था। कौन सी बात किस पर भारी पड़ रही थी, इसका हिसाब क्या... बस कुल मिलाकर यह सब दम घोंट दे रहा था उसका। जीवन जो, अचेतन में कहीं एक उस दिन की आस पर टिका था, जब कि मिस दत्ता को दलदल से निकाल कर नियति सुनहले भविष्य की ओर ले जाती..., वही गहरे नैराश्य में डूब गया।

इस घटना के दो दिन बीत चुकने पर ही पिछले कई महीने के परफॉरमेंस से प्रसन्न होकर बैंक की तरफ से मिस दत्ता की प्रोन्नति कर दी गई थी। और अब उसका काम नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे की हरकारी नहीं रह गया था। बल्कि अब उसके पास उसके नाम का पट्ट लगा एक चौकोर वर्क-स्टेशन था, जहाँ एक्सटेंशन फोन, मॉनिटर जैसे कुछ आवश्यक ऑफिस के उपकरणों के साथ सजावट की कुछ निजी चीजें रखने की भी अनुमति थी। यहाँ उसे ग्राहकों के आवेदनों को प्रोसेस करना था। किसी उत्पाद को बेचने के लिए लोगों से मिन्नतें और तर्क करने की मजबूरी न थी यहाँ। इस सीट को पा लेना अब तक मिस दत्ता की सबसे प्रबल साध में से एक हुआ करती थी। पर अब, जबकि ऐसा हो चुका था, मिस दत्ता दिन-पर-दिन सूखती चली जा रही थीं!

एक लंबे अरसे तक मार्केटिंग में रहने के बाद अब चुपचाप बैठकर किया जाने वाला काम अखर रहा था उसे, ऐसा नहीं था। बल्कि एक खास किस्म की उदासी, जो कि घुन लग जाने की तरह गुमसुम थी... फैल गई चारों तरफ। किसी से भी वह पिछले दिनों की घटनाओं का जिक्र नहीं कर पा रही थी। यहाँ तक कि अपने आप से भी खुल कर संवाद की कमी थी।

उसके पास कुल सत्रह जोड़ी कपड़े थे। पहले वह सोमवार को सफेद, मंगल को लाल, बुध को हरा, वृहस्पति को पीला, शनि को काला और शुक्रवार को कोई सा भी रंग पहना करती थी। नियत दिनों वाले पाँच रंगों के दो-दो जोड़ी कपड़े थे उसके पास और बाकी बचे कपड़े... शुक्रवार के खाते के गुलाबी, नीले, बैंगनी... आजाद रंगों के। वह नियत रंगों के दो जोड़े कपड़ों का इस्तेमाल क्रम से दो हफ्तों में किया करती थी। इससे एक कपड़ा पंद्रह दिन बाद ही रिपीट होता अमूमन और लोग समझते थे (वह ऐसा समझती थी कि उसने लोगों को समझा दिया है) कि उसके पास कपड़े काफी हैं। पर यह सब बीते दिनों की बात हुआ करती थी अब। वर्तमान में वह दिन और रंगों की जुगलबंदी बिसरा चुकी थी। और लाल के बाद क्रम में कभी काला आ जाता तो कभी फिर से अगले हफ्ते का लाल ही। कभी-कभी ऐसा होता कि रात को जब वह शिमला मिर्च और गाजर को चॉप-बोर्ड पर रख चाकू उठाती, तब उसे याद आता कि दोपहर का भोजन तो लंचबॉक्स में बंद उसके साथ ही वापस आया है दफ्तर से। कभी जब छठवीं मंजिल के दफ्तर के कर्मचारियों का, मार्केटिंग के जमाने का उसका ही सोर्स किया गया आवेदन, प्रोसेसिंग के लिए उसी के पास आ जाता, तब भी किसी प्रकार की खुशी, लगाव या अचरज का अभाव रहता उसके स्टॉक में।

यह सब वह किस लिए कर रही थी यह एक मुश्किल सवाल था। या शायद यह सब आप-ब-आप हो रहा था। पर इन सब परिवर्तनों का सिवाए उसके, किसी और के लिए कोई महत्व न था। क्योंकि इस वर्क-स्टेशन के आस पास के लोग अभी भी उसके लिए 'मार्केटिंग वाली लड़की' संबोधन का प्रयोग करते थे। कुछ महिला सहयोगी जरूर उसके इन बेसुरे क्रिया कलापों को प्रेम में धोखा से और पुरुष सहयोगी मार्केटिंग में अतिरिक्त कमाई की संभावनाओं और सीट परिवर्तन की स्थिति में ऊपरी आमदनी के रुक जाने की छटपटाहट से जोड़ कर देख रहे थे। बहरहाल जो भी था... उसके मन का हाल जानने बाँटने का कोई पात्र इर्द-गिर्द मौजूद न था यह बात उभर कर सामने आई थी। यह बात भी कि पहले का उसका खुलापन और पारदर्शी व्यक्तित्व उसकी अपनी पहल पर ही था। वह सब किसी बाहरी कारक पर नहीं बल्कि उसके अपने मन के तोष पर टिका था।

जो भी था इन सबसे निकलने की कोई उतावली उसके हाव-भाव से प्रकट नहीं हो रही थी। वह पूरी मेज पर आवेदनों को छितराए लाल-नीली स्याही का उपयोग कर रही थी बारी-बारी से कि बगल वाले टेबल के आगे से कुर्सी को उसके सामने तक खींचकर कोई बैठ गया। मिस दत्ता ने पहली बार गौर किया कि उसके सामने की जगह में कोई कुर्सी नहीं थी। कोई भूले भटके आ जाता और अपना हाथ-पैर नहीं चलाता तो खड़े ही

रह जाना होता उसे। बाद में जो बात मिस दत्ता संज्ञान के में आई वह आगंतुक की पहचान से संबंधित थी और जिस पर कि मिस दत्ता ने वही प्रतिक्रिया दिखाई, जो कि अपेक्षित थी उन दिनों के उसके व्यवहार के मद्देनजर। वह वापस लाल-नीली स्याही के धंधे में लग गई।

'मिस पूरबा... उस रोज आप भूल गई थीं... मेरे दफ्तर में' - उसने मेज पर एक फोल्डर रख दिया अलग-अलग उत्पादों का ब्रोशर जिसके भीतर था और जो अब मिस दत्ता के किसी काम का नही था।

थोड़ी देर तक खामोशी बनी रही। फिर मिस दत्ता ने कहा - 'ऐसा कुछ तो नहीं लाए आप कि जवाब में शुक्रिया की प्रतीक्षा की जाए।'

'यह शायद बेअदबी है। इनसानी गरिमा भी कोई चीज होती है...। बाहर आएँगी जरा दो मिनट बात करनी है।'

मिस दत्ता बिना किसी लाग-लपेट के उठ गई।

'क्या चीज होती है इनसानी गरिमा? समझा ही दीजिए आज मुझे' - बाहर निकलकर छज्जे के नीचे धूप से अपने चेहरे को बचाते हुए मिस दत्ता ने पूछा।

'आप मुझसे इस तरह बात क्यों कर रही हैं?'

'आप मुझे पहचान गए थे फिर भी मेरी प्रेजेंटेशन सुनने के बाद मुझे बाहर का रास्ता दिखाकर दरअसल में क्या मुझे इनसानी गरिमा का पाठ पढ़ा रहे थे आप!'

'मैं कहाँ पहचान पाया था! आप ने पहचाना था और मेरी बातें दुहराई थीं।'

'ऐसा कुछ नहीं था आप में कि मैं पहचान जाती। समझे आप!'

'आप इस तरह ओवर रिएक्ट क्यों कर रही हैं? हम बैठ कर आपस में सुलझा सकते हैं।'

मिस दत्ता ने हवा में सामने वाले का काल्पनिक हाथ झटक कर कहा -' मेरा कुछ भी उलझा नहीं है। टूट गया है मेरा।'

'क्या टूट गया है!'

'टूट गया है नहीं टूट गई है। वह दुनिया, जो मैंने बनाई थी अपने लिए। जिसमें मैं अपनी मरजी से साँस ले सकती थी और अपनी इच्छा से चीख सकती थी... चिल्ला सकती थी किसी पर भी। आप उस लिफ्ट के चौखाने से अपने लिए मुक्ति का मार्ग तलाश रहे थे और मैं अपनी निजात का। उस दबे-कुचले आत्मसम्मान वाली दुनिया से निजात का जिसमें मैं चौबीसों घंटे साँस लेती थी। और मैंने रच डाला भी उसे। पर आपने क्या किया! मुक्ति तो आपको भी मिल गई उस दुनिया से पर दूसरी दफा जब मैं आई आपके दफ्तर तब मुझे पहचान कर भी आपने जताया नहीं। मैं अपने उसी दबे-कुचले सम्मान वाले पेशे का हुनर आपके सामने दिखाती रही और आप मजे लेते रहे। और मेरा शो खत्म हो चुकने के बाद आपने गुरूर से कह दिया कि जा सकती हूँ मैं...!'

'मैंने आपको नहीं पहचाना था यकीन मानिए।'

'जाइए आप यहाँ से अभी!'

'हम बैठ कर...'

'बैठ कर! अभी आपको और भी वक्त चाहिए मेरे साथ! आपको सत्ताईस मिनट अड़तालिस सेंकेंड मिले थे लिफ्ट में। पर क्या किया आपने उसका यह आप भी जानते हैं मैं भी' - वह मुस्कुराई। वक्र मुस्कान। और वापस मुड़ गई।

मिस दत्ता जब वापसी के रास्ते पर थी, तब उसे अपने कदम बेहद हलके लगे। बोझमुक्त। वह साँस भरकर सीढ़ियाँ चढ़ गई और अपनी जगह पर आकर उसने गुनगुनाते हुए नीली कलम उठा ली।

उस रात शिमला मिर्च की जगह फूलगोभी और गाजर की जगह प्याज काटते हुए वह तड़ातड़ अपने आँसू पोंछती जा रही थी। उसके हाथ का चाकू बहुत तेज गति से अपना काम निबटाता जा रहा था। उसी समय अचानक उसे अहसास हुआ कि उपादान तो पहले से भी थे उसके पास। दिन भर वह जो कुछ भी सह आती थी, उन ठेस वाले पलों की स्मृतियों को उत्सर्जित करने के माध्यम, मौन सही, पहले से उपस्थित थे उसके पास। सब्जियों को खूब तेजी से काटना, तेज-तेज सीढ़ियाँ चढ़ना, कपड़े को रगड़-पटक कर धोना, लीडपेन की स्याही से खूब गहरे उकेर कर लिखना... कोई भी स्त्री-सुलभ महीन गुण नहीं थे उसके संचय में। यह सब उसका मौन प्रतिकार ही था संभवतः। पर इस माध्यम में वह कूवत नहीं थी, जो उसके गुबार को भभाके की शक्ल में निकाल सके।

उसने उन बातों को दुहराया मन-मन जो कि धूप के तीखे पसीने की मौजूदगी में कहे गए थे। क्रम से याद करते हुए वह उस जगह अटक गई जहाँ सामनेवाले ने कहा था कि पहले पहचान करने वाली वह थी। वाकई! अगर कि उसने नहीं पहचाना था तो लड़के के कॉपीराईट वाला संवाद दुहरा कैसे पाई वह! जब प्रोफेशनल मोर्चे पर उस तरह की उपेक्षा आम थी उसके लिए तब क्या किसी संभावित ग्राहक के आगे इनसानी गरिमा वाला संवाद उचारने की कूवत थी उसके पास? हरगिज नहीं। यानी? क्या ये कि पहले उसने ही पहचाना था सामनेवाले को। हाह! जो भी हो।

यह तो सत्य था कि फिर से उस आदमी के दृश्य में आने के साथ ही उसका अपनी रची हुई दुनिया से बिसरा हुआ कनेक्शन दुबारे से स्थापित हो गया था और वह उसी पुराने अंदाज में सक्रिय हो गई थी। यानी कि जिस दुनिया के टूट जाने का शोक वह मना रही थी वह टूटन असल में एक छलावा था और वह व्यक्ति एक सूत्रधार था। जो कि फिर से उसे डोर थमा कर चला गया था या कि खड़ा ही रह गया था... शायद उसके वापस सीढ़ियाँ चढ़ जाने तक। वह जो भी था... जिस भी हैसियत से उसकी उपस्थिति, यह तो था कि उसमें धैर्य बहुत था। पर उसकी इस सोच के समानांतर वह स्मृति ताजा हो गई जब वह लिफ्ट में तोबड़तोड़ मुक्ति के लिए प्रयासरत था! वह धीमे से मुस्कुराई। पनियाई मुस्कान। पिछले दो-तीन मर्तबा की तरह इस बार ऐसा करते हुए उसके होंठ टेढ़े नहीं हुए और वह बुदबुदाई - बुरबक।

दिमाग सुन्न था। अजीब सी उथल पुथल पर से नंगे पाँव चलकर जा रहा था मैं। कितने सारे इल्जामों की बेड़ियाँ अपने पैरों में लपेटे चला आ रहा था मैं। हाथ हालाँकि खाली थे। मेरे बचपन की बात है। एक मर्तबा किसी ने बताया था कि बरसात के केंचुए नमक डाल देने से मर जाते है। और फिर मैं चलती-फिरती कत्थई लकीर देखते ही मुट्ठी भर नमक से उसे पाट देता था। कोई मुझसे उतनी हत्याओं का हिसाब अभी माँगे तो जिस तरह अपने को इनोसेंट समझता मैं, उतना ही अबोध इस समय भी खुद को पा रहा था।

लौटते हुए दुनिया सौदागरों से पटी लग रही थी। फूल वाले, गाड़ी के शीशे पर छाँव के लिए महीन जाली वाले, गुब्बारे वाले... पूरी की पूरी सड़क मार्केटिंग एक्जिक्यूटिवों से पटी। सब-के-सब कुछ-न-कुछ बेचते। बल्कि माँग और पूर्ति का नियम यहाँ आकर लचर गया था और खरीदार से ज्यादा बेचनहार मौजूद थे... कुछ-न-कुछ बेचते। कोई सामान के गुण गिनाता और संभावित खरीदार के आगे बढ़ जाने से चुपचाप खड़ा रह जाता। कोई उनके पीछे-पीछे दूर तक भागता अपनी धुन में खूबियों का अंबार लगाते

हुए। बेचनेवालों से ज्यादा कद्र तो सामानों की थी। खरीदार खेमे के किसी प्रतिनिधि के हाथ से लगकर अगर कोई सामान गलती से गिर जाता तो कभी-कभी वह वापस मुड़कर उसे उठाकर रख तो देता था सही जगह पर। पर बेचनेवालों की चोट से कोई सरोकार नहीं था किसी को भी। इनसानी गरिमा का चैप्टर इस बाजार में तब्दील चौराहे पर सबसे ज्यादा बार उलटा-पलटा गया... किताब को उसके फट जाने की हद तक चाटा गया, पर उसकी स्याही से सबसे कम पहचान थी इन पढ़नेवालों की।

लोग कहते थे मेरी दुनिया के कि बाजार इतना शक्तिशाली होकर उभरा है और खरीदार इतने अस्थिर और कसौटी-विहीन कि कहीं भी कुछ भी बेच दिया जा सकता था! पर यह सब शायद उस बाजार की बात थी जिसके पीछे बेशुमार पूँजी की ताकत थी। लेकिन जिन बेचनहारों का आधार कमजोर था और जहाँ नैतिकता के अंश बाकी थे... भले तलछटी में, वहाँ एक चीज बेच देना भी किला फतह कर लेने के समान तकलीफदेह था।

मैं एक जिम्मेदार खरीदार की तरह आगे बढ़ा और मैंने बिना दाम की जानकारी लिए और बगैर यह परखे कि जेब से जो रुपये निकाले हैं, वे दरअसल थे कितने..., बढ़ा दिए पैसे फूल वाले की तरफ। वह पैसे देखकर भी नहीं समझ पाया कि मेरी मंशा उसके सामान को खरीद लेने की थी। वह बेचता रहा फिर भी मुझे, वे ही चीजें जिनके दाम हवा में लहरा रहे थे। मैंने दाम पूछा फिर पैसों की परख की। पैसे काफी ज्यादा थे कीमत की तुलना में। फिर भी वह फूल और पैसों की अदला-बदली को प्रस्तुत न था। जाली वाला, गुब्बारे वाला, कलम वाला... सब पर आजमाया मैंने अपने खरीदार होने का हुनर पर सब बस अपने-अपने सामानों के गुण बताए जा रहे थे...। पैसे हाथों में लहराता होने के बावजूद खरीद कुछ नहीं पाया मैं। तो क्या वह सब लड़की के खेमे में लामबंद हो चुके थे और सबने एक ग्राहक के रूप में अयोग्य करार दिया था मुझे!

गिल्ट की एक गाढ़ी परत जम चुकी थी और उन्हें खुरचे बगैर आगे कुछ संभव न था। यह बात तो थी कि इरादतन मैंने कुछ किया न था। जो भी हुआ या तो अकस्मात या कि प्रतिक्रिया में - जो कुछ उसने किया उसके जवाब में किया गया। और अगर देखा जाए तो वह लड़की थी गजब की ढीठ। मैं कहाँ उसे यह बताने गया था कि उस लिफ्ट वाले संकट का मैंने कैसा खूबसूरत रचनात्मक उपयोग किया। बैंगनी पृष्ठभूमि पर बाल के झुरमुटे में छिपी कान की मोती गुँथी बालियों वाला ऐसा वेब पेज डिजायन किया जिसे हाथों-हाथ खरीद लिया गया और कहाँ उसने मुझे नीचा दिखाने में सारी प्रतिभा झोंक दी। शुक्र था कि बात इतने पर रुक गई। अगर कहीं वह ऐसे झपट्टे न

मारती और मैं उत्साहित होकर बता डालता सब... तो बहुत संभव कि बेइज्जती के नए मानदंड स्थापित करवा के ही लौट रहा होता अभी।

मुझे हँसी आ गया। वह मुझे हँसा सकती थी, ऐसे भी विपरीत समय में। कैसे बिचक-मिचक कर जवाब देती थी वह लड़की किसी भी बात का। और उस दिन! दफ्तर में प्रोडक्ट्स की जानकारी देती लड़की और होंठ ऐंठ-मेंठ के जवाब देती लड़की में कोई साम्य कहीं से नहीं था। तो क्या वास्तव में वह संजीदा थी और मेरी उपस्थिति उसे व्यंग्य से टेढ़ा कर देती थी या कि वह थी मगरूर और दफ्तर का अनुशासन उसे काबू में रखता था। या कि वह इन दोनों ध्रुवों से उलट किसी और दुनिया से वास्ता रखती थी...। जो भी था, उसके इल्जाम, उससे उपजा गिल्ट या उसके झगड़ालूपने की समृति..., मैं उसे लंबे समय तक जीना चाहता था... यह तय था।

कितनी अजीब बात थी कि दूसरी बार जब वह आई थी तब उसने क्या पहना था या कि आज ही चेहरे के तमतमाए लाल रंग के सिवा क्या रंग था उसका, यह मैं नहीं देख पाया। बस अँधेरे में देखा हुआ बैंगनी रंग ही मेरे लिए उसका पर्याय बन गया था। और यह भी इत्तेफाक कि तीन बार की पिछली मुलाकातों में विदाई उसके मुड़ कर जाने से ही हुई और हर बार वह इस तरह मुड़ी जैसे अगली बार की बारी आएगी ही नहीं कभी! हद थी कि इस तरह ठुकराया हुआ होने के बाद भी मैं फिर से अगली बार मिलने की जुगत सोच रहा था।

ऐसा नहीं था कि उसमें कोई कशिश थी ऐसी कि मैं अपना आत्मसम्मान दाँव पर लगाए बैठा था। जो चीज उसके व्यवहार के पीछे काम कर रही थी, उसके आकर्षण में फँसा था मैं। किस परिस्थिति में क्या करेगी वह, किस बात पर क्या प्रतिक्रिया होगी उसकी, इसे बूझ पाने का फार्मूला एकदम से हाथ नहीं लग रहा था मेरे। हालाँकि मेरे हिस्से का यह सच फिर से उसी इनसानी गरिमा वाले सवाल को तार-तार करता था कि मैं उसे इनसान के रूप में नहीं एक दिलचस्प विषय के रूप में पसंद कर रहा था।

जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे वह अगरबत्ती के धुएँ के मानिंद मेरे आगे भागती जा रही थी। हवा की दिशा से भी बेखबर कभी-कभी। मैं कोई भी चीज सोचना चाहता तो गलती से या सही से उसे ही सोच लेता। जबकि सचाई थी कि मुझे शायद उसका चेहरा तक ठीक से याद न था। और शहर के शोर में वह बीच के दिनों में मुझे मिल भी गई हो तो शर्तिया मैं उसे पहचान भी न पाया होऊँगा।

याद आने के ऐसे ऐसे बहाने मैंने पहले कभी महसूस न किए थे। एसी का टेंपरेचर कम करने को रिमोट उठाता तो लगता 'पूरबा' के झोंकों को आ जाने देने के लिए परदे सरकाए हों। जब भी अपने पीछे कोई दरवाजा बंद करता तब बैंगनी सूत के मसक जाने की आहट मिलती। परदों के हिलने-डुलने से जब घर के भीतरी दरवाजे पर लटकते महीन घंटियों वाले विंडचैम की सुरीली रुनझुन होती तब कान की बाली के मोतियों की सरसराहट सुनाई देती। जब भी गाड़ी किसी क्रासिंग पर रुकती, लगता वह खिड़की के शीशे के उस पार से ही अपने फूलों की खासियत हाव-भाव से जता कर मजबूर कर देगी मुझे शीशा सरका कर उन्हें भीतर का प्रवेश मार्ग सुलभ कराने पर। इस खिंचाव की तीव्रता इतनी अधिक थी कि मुझे डर लगने लगा था कि यह ज्यादा लंबी साँस सँभाल नहीं पाएगी। इसकी लंबी उम्र पर मुझे शक होने लगा था। लिफ्ट का फर्श, दरवाजा, इमरजेंसी बेल, बैंगनी सूत का टुकड़ा, बाली के मोती, फूलों से सहरती पूरबा हवा... और हाँ याद आया जब वह मेरे दफ्तर आई थी उस रोज का असरा-पसरा काजल... । सब था। इतने सारे कारक थे पर इनसे स्पेस अपना, मैं नहीं बना पा रहा था।

बना तो मैं उस दिन भी नहीं पाया था कुछ, जब उतना एकांत झोली में आ गिरा था...। एक भी खूबसूरत पल अपनी पहल पर गढ़ नहीं पाया मैं। बल्कि अपनी ऊटपटाँग हरकतों से संभवतः सहयात्री के प्रयास में भी बाधक बनता रहा। वे पल जो मैंने गवाँ दिए थे, मुझे भेदने लगे।

एक अजीब किस्म की छटपटाहट थी। उगलने और निगलने के बीच फँसे हुए कौर की तरह। खराब उपमा है पर मेरी इंटेंसिटी का पैमाना बन सकती है। जिंदगी अचानक से दो फाँकों में विलग चुकी थी। लिफ्ट में सवार होने के पहले का जहान और बाद का संसार। पूर्वार्ध वाली ओर दुनिया भर के तमाम ओल-झोल पात्र थे पर उतरार्ध वाले पक्ष में सिर्फ घटनाओं के कतरे थे जहाँ-तहाँ फैले हुए। मैं उन्हें समेटने के लिए ज्यों ही हाथ बढ़ाता था, हवा में ही कोई मेरा हाथ झटक दे रहा था। तो इस बिखराव के ऊपर ही इस तरह रख देना था मुझे अपने आप को कि कुछ भी उड़ियाने न पाए... हवा का झोंका चाहे जिस तरफ से आए।

मैं शिद्दत से उस आकर्षण की डोर को थामे बैठा था कि अचानक मेरे चेंबर का दरवाजा खुला और वह धड़धड़ाती हुई कमरे में दाखिल हुई। हाँफती और बेसँभार। उसे बैठने तक की सुध न थी और वह खड़े-खड़े शुरू हो गई। यह सब मेरे लिए सिरे से अप्रत्याशित था। उसने जो कहा उसका लब्बोलुबाब यह कि लगातार उससे आवेदनों

की प्रोसेसिंग में भूल होती जा रही थी और इसी वजह से उसे नौकरी गँवानी पड़ी। फिलहाल वह बिना किसी काम के, बगैर सहारे... लगभग सड़क पर थी। उसे मार्केटिंग का अनुभव था लिहाजा वह मुझसे अपने दफ्तर में नौकरी पर रख लेने का फेवर चाहती थी। बिना किसी लाग-लपेट के दो मिनट के इल्तजा भरे संवाद में उसने अपनी बात खत्म की। मेरा दफ्तर लीन वर्क फोर्स वाला था। फिर भी दो एक कर्मचारी के लिए तो गुंजाइश बैठाई ही जा सकती थी। यह तो पर दूसरी वरीयता की चीज थी। जो बात प्राथमिक थी वह ये कि इस दीन-हीन गेट-अप और नाखूनविहीन अस्तित्व में जो लड़की मेरे सामने खड़ी थी, मैं उससे किसी प्रकार का तादात्म्य बना ही नहीं पा रहा था। कौन थी ये! मैं उससे 'बैठ तो जाइए' - ऐसा भी नहीं कह पाया। क्योंकि डर था कि कहीं ऐसा कहने पर वह आकर मेरे पैर न पकड़ ले। मैं सदमे में ही था कि उसने खुद ही बैठते हुए कहा कि वह कुछ भी करने को तैयार है और वेतन कोई सा भी चलेगा।

मैं पसीने से नहा गया उस टेंपरेचर में भी। ऐसा लिजलिजापन मैंने यकीनन हाल-फिलहाल में महसूस नहीं किया था। बहुत बड़ा छल था यह मेरे साथ नियति का। वह गर्वीला आकर्षण फूलकर कैसा भोंथरा हुआ पड़ा था। भयानक सा वैराग्य जागा मन में। उस लड़की के लिए मैं कुछ तो कर ही देने वाला था पर मेरा सब कुछ खो चुका था। और उस खो चुके के लिए कुछ भी करना किसी के बूते का न था।

मैंने सिर डुलाकर जता दिया कि उसकी मदद कर दूँगा। वह आभार प्रकट करती हुई उठ खड़ी हुई और चलते चलते उसने मेरी सात पीढ़ियों के कर्ज में खुद को डुबो कर दुआ देने वाले अंदाज में कहा - 'इनसानी गरिमा...'

मैंने कान हाथों से ढाँपकर सिर झुका लिया। अब बर्दाश्त के बाहर था। लगा एकबारगी कि चीख फूट पड़ेगी और यही वह क्षण था जब कि मैं चौंककर जागा। अँधेरा था और झपटकर बिजली जलाने के बाद भी उसकी मौजूदगी के ताजे निशान नहीं मिले कमरे में। तो...! वह सब सच नहीं था। सपना था! सपना। उसका स्वाभिमान अक्षुण्ण था अभी तक। और मेरा आकर्षण बच गया था साबूत! मैं हिचकोले वाली रुलाई में डूब गया। इतनी तसल्ली, ऐसी प्रसन्नता, ऐसा आवेग मैंने कभी महसूस नहीं किया था एक साथ।

कँपकँपी सी थी। भीतर से निकलने को कितना कुछ था पर रास्ते की सीमा थी। लिफ्ट के इस पार वाली दुनिया की समस्त घटनाओं का सार था जो अभी मेरे

मुँह-आँख-नाक से बह रहा था। तो मैं उसके प्रेम में था! मैं उसकी तनी हुई गरदन के प्रेम में था। मैं उसकी आजादी के प्रेम में था।

यह वो बिंदु था, जिसपर कि अगर दुनिया भी खत्म हो जाती तो मुझे कोई अफसोस न होता। यह अपने आप की नाभि और परिधि में एक साथ होने का पल था। ऐसा लम्हा जबकि आत्मा और शरीर की दूरी पट जाए।

मुझे अपने आप को संयत करने में वक्त लगा और फिर मैं खिड़की से लगकर खड़ा हो गया काँच को पूरी तरह सरका कर। कितनी सुकून देती हवा थी, जिसे एसी के विकल्प से मैंने परे हटा कर रखा था। पुरवइया थी तेज और उसका लम्स मैं पुरसुकूनी से महसूसता रहा। यह हवा, जो मेरी साँसों में तब्दील होती जा रही थी, मेरे लिए किसी का प्रतीक भी थी। बहुत मुमकिन है मैं उससे दुबारे कभी न मिल पाता और हम दोनों में से किसी एक के इनसानी गरिमा के पाठ का ककहरा भूल पाने का संयोग फिर कभी बनता नहीं, पर उसकी रची दुनिया के आधार को थामे रखने के लिए मुझे बने रहना था... इस संसार में। उसकी बनाई स्वतंत्र दुनिया मुझ पर टिकी थी, यह हो सकता है मेरा वहम हो... पर मेरा प्रेम उसकी आजादी पर टिका था, इसमें अब कोई शुबहा था नहीं।

शहर शांत था अधबुझी रोशनी से लुकझुकाता और ताजी धुली आँखों से उस धुँधलापने को चीरता मैं साफ-साफ देख पा रहा था कि यहाँ से आगे उसकी बैंगनी दुनिया के स्पर्श की चाह का अनंत अभी बाकी था...